लोटे का सिकुड़ता साम्राज्य

क्या गाँव, क्या शहर, आदमी लोटे की बजाय गिलास से पानी का आदी हो गया है। यही नहीं, सूर्योदय-सूर्यास्त के वक्त खेतों, जंगलों, झाड़-झंखाड़ों में शौच के लिए लोटे की जगह बोतल या बाढ़-दहाड़ के पानी का आसरा लिए यों ही चला जाता है। यदि इतना ही होता, तो भी गनीमत होती, क्योंकि शौच चाहे खुले खेत ही में क्यों न हो, उसकी सेवा से निवृत्त किए जाने पर लोटे के चलन का दायरा जरूर सिकुड़ता, परंतु इससे उसके मान-सम्मान पर आँच नहीं आती, उल्टे शुचिता में बढ़ोतरी की संभावना बलवती होती। सभ्यता के उत्कर्ष के साथ खुले में शौच जाने को 'असभ्य' व 'पिछड़ी' संस्कृति ही नहीं, गँवारू प्रवृत्ति मानने की परिपाटी प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है, ऐसे में शौचकर्ता, शौचालय और शौच के समय निरंतर साथ निभाने वाला लोटा भी कैसे असभ्यता के अभिशाप से मुक्त रहता। कम से कम उन लोटों के बारे में अभद्रता का आरोपण एकदम सही है, जो शौच के लिए ही रिजर्व रहते थे या बाकी कार्यों के साथ शौच के लिए भी प्रयोग में लाए जाते थे। रूढ़िग्रस्त अकुलीन इस्तेमाल के कारण अपने जर्जर रूप-आकार में ये अपनी तौहीनी की कथा कहते, अलग-थलग रहने को मजबूर थे; दूसरे की इज्ज़त रखने की खातिर खुद ताउम्र बेइज्जती भरा उपहास झेलते थे। कहते हैं, कसकर लगे मल-गलीज से निवृत्त होने के उपरांत आदमी सर्वाधिक सुखद महसूस करता है, इसके सामने दुनिया के सारे सुख बौने लगते हैं। इस भौतिक-दैहिक सच्चाई का कभी न कभी सामना अवश्य किया होगा, अतः इसे कबूल करने में भी कठिनाई नहीं होगी।

आधुनिकीकरण के दौर में भी खुले में शौच की कुप्रथा मजबूरी में ही सही, चालू है, पर कभी इसके सहचर रहे लोटे इनसे दूर होते गए हैं। यह गँवारू रिवाज सभी भारतीय शहरों, महानगरों में अनिवार्य रूप से नियमित है। शौचालय योजना और सामाजिक जागरूकता को अंगूठा दिखाते, खाली स्थानों व सड़क किनारे सुबह-शाम लोग मलत्याग करते हैं। गाँवों की क्या बिसात यहाँ, जहाँ अपवादस्वरूप भी एक छोटा शहर नहीं, जो खुले में शौच से पूर्ण रूपेण रिक्त हो। स्वच्छता मिशन के तमाम उपायों व शासनिक दावों-प्रतिदावों के साथ अरबों-खरबों का सरकारी धन बहने के बाद भी लोग खुले में शौच जाने के लिए बाध्य हैं, भले ही बाढ़-बारिश के कारण खुला स्थान न के बराबर ही क्यों न बचता हो। कुछ जगह जहाँ खुले में शौच रोकने की आंशिक व्यवस्था बनाने का यत्न हुआ, वहाँ आदत से लाचार लोगों ने निगमकर्मियों को ठेंगा दिखाया। समाचारों में इन लोगों को 'लोटा पार्टी' कहा गया, हालाँकि सब लोटाधारी नहीं थे, अनेकों ने डिब्बे-बोतल पकड़ रखे थे।

लोटा का विस्थापन मल-पुरीष के आदि निर्माता भोजन और सामाजिक-सामूहिक भोज से भी हो चुका है। पहले लोटा लेकर जा रहे व्यक्ति या व्यक्ति समूह को देखकर यह विस्मय जगता था कि वे भोज खाने जा रहे हैं या फिर शौच करने? समय, परिस्थिति के अनुरूप पूर्वज्ञान या अनुमानित आकलन के आधार पर सदा से यह दृश्य हास्य-व्यंग्य का उर्वर विषय बनता रहा। यह लोटे का ही कमाल था कि एकसाथ कई खवैयों के पत्तल धोने से लेकर चूड़ा फुलाने तक को अंजाम पर पहुँचा देता था, जो गिलासों के बूते से बाहर की बात थी ही नहीं, है भी; वह भी तब, जब गिलास अब की अपेक्षा बड़े हृष्ट-पुष्ट होते थे।

लेकिन अब छिटपुट मिट्टी का कुल्हड़ और प्रायः प्लास्टिक-कागज के गिलास ने लोटे का स्थान ले लिया है। प्लास्टिक-कागज या शीशे के गिलास बनाने वालों के मन में लोटा बनाने की जहमत नहीं समाई, चलने-चलाने की बात तो दूर है; लोटेनुमा बन रहे नक्काशीदार पेय पात्र भी अब गिलास ही कहलाते हैं, लोटा नहीं। यद्यपि मिट्टी के गिलासनुमा कुल्हड़ बनाने वालों ने शुरू में लोटे भी बनाए थे, बेशक अब नहीं बनते। कहा जाता है कि 1856 में मुजफ्फरपुर जेल के कैदियों को जब पीतल की जगह मिट्टी के लोटे दिए जाने लगे, तो कैदियों ने विद्रोह कर दिया, जिसे 'लोटा विद्रोह' के नाम से जाना जाता है। यह रहस्य का विषय है कि मिट्टी के लोटे कैदी की तरह का एहसास बढ़ाने के लिए दिए जाने लगे या फिर सुरक्षा संबंधी कारणों से, क्योंकि लोटे का हथियार रूप में प्रयोग आसान है और खतरनाक भी; आव दिखता है न ताव, छोटा-मोटा आपसी झगड़ा होते ही जड़ दिया लोटा या चला दिया लोटास्त्र; जो किसी कैदी की जान पर भारी पड़ सकता है।

जिस तरह खुले में शौच जाना आदिम आदत है, उसी तरह लोटे से पानी पीना भी आधुनिकता के अनुकूल नहीं बैठता, फलतः गँवई-रूढ़िवादी लोग भी गिलास से पानी पी लेने में ही भलाई समझने लगे हैं, भले ही लोटे की याद ताजा करते नहीं अघाते कि लोटा से पीने पर ही मन भरता है। लोटा, गिलास दोनों गिरकर लुढ़कने में माहिर हैं, फिर भी लोटा लुढ़कता कम था, किंतु जब लुढ़कता था, तो गिलास के बनिस्बत ज्यादा जलाजल फैलता था। उनमें भी बिना पेंदी वाले लोटे लुढ़कने की अधिक आजादी ओढ़े रहते थे। 'बिना पेंदी वाले लोटों' की तरह आदमी भी सदा से रहे हैं, जिनके लुढ़कने को लेकर मन में

संशय तो बिलकुल नहीं होता, पर कब, कहाँ, किस ओर 'डगरे के बैगन' की तरह ढलक जाएँगे, इसका कोई पूर्वानुमान सार्थक साबित नहीं होता।

बहरहाल, लोटे का गुण एक-दोमुखी नहीं, बल्कि बहुमुखी है, अपने एक बार के पानी भंडार से सतुआ सानवाकर पानी पिलाने में समर्थ है। आपातकाल में चावल, दाल पकवाने की क्षमता रखता है। बाल्टी-मग के अभाव में अकेले ही नहवाने में सफल होता है, कुएँ से पानी खींचने में भी कारगर है। विपत्ति में सहायता करता है, चाहे आपातकालीन मारधार में शस्त्र के रूप में इस्तेमाल की खूबी हो, या फेंककर अस्त्र के तौर पर प्रहार का सामर्थ्य – दोनों ही मोर्चों पर यह समान रूप से सफल सिद्ध होता है। आर्थिक विपन्नता में स्वयं को बंधक या गिरवी में रखकर अपने सजीव स्वामी की तत्कालीन जरूरत को पूरी करा देता है। गुणों के आगार लोटे के साथ कुछ परंपरागत लौकिक मान्यताएँ जुड़ी रही हैं, जहाँ यह खाँटी लोक संस्कृति का वाहक ठहरता है। दूसरी ओर, पुरातन शिष्ट संस्कृति का संबल होने का इससे बेहतर पात्र नहीं मिलता। इस प्रकार लौकिक और आध्यात्मिक संस्कृति का एकसाथ संवाहक है। परंतु इसे जीवन स्तर के प्रतिकूल, 'मोटा' पात्र मानकर दूर किया जा रहा है। यह ठोस खाने और पीने का प्रतीक है, तुरंत-तुरंत, जल्दी-जल्दी खाने-पीने का नहीं, जैसा कि आधुनिक मानस हर स्तर पर मुँह जुठाने और खाने की ललक लिए सोचता फिरता है। शास्त्रीय संस्कृति प्रतिदिन के भोजन की संख्या सीमित रखने को मनुष्योचित मानती है, जबकि आजकल का आहार ट्रेंड व चिकित्सीय विमर्श थोड़ा-थोड़ा और जल्दी-जल्दी खाने की वकालत करता है। लोटे का पानी खाली पिलाने भर तक सीमित

नहीं, बल्कि मुँह-हाथ धोने-धुलवाने की संभावनाओं का स्टाक समेटे रहता है। पूंजी निवेश और पूंजी उपार्जन के मामले में भी लोटा गिलास पर भारी पड़ता है, इसलिए लेने वाला चाहे प्रयोग करे या न करे, पर मंशा रखता है लोटे की ही। तिलक-दहेज में इसी कारण लोटे का राज बना हुआ है। बहुधर्मी उपयोग एवं संस्कृति का संवाहक लोटा कइयों के जीवन का अभिन्न अंग और रात-दिन की यात्रा का संगी-साथी रहा है। सामान्य जनजीवन से अपदस्थ होने के बावजूद धार्मिक रीति-रिवाजों व सांस्कृतिक क्रियाकलापों में बने रहना – इसका प्रबल पक्ष है। धार्मिक कर्मकांडों व कलश के रूप में इसकी मान्यता को गिलासों की ओर से खास चुनौती नहीं मिल सकी है। लेकिन ऐसी आशंका बनती जा रही है कि लोटे की अनुपस्थिति-अनुपलब्धता का लाभ उठाकर सर्वसुलभ गिलास यहाँ भी अपना राज स्थापित न कर ले, आखिर जब लोटे होंगे ही नहीं, तो गिलास की पूछ बढ़ेगी ही, उसका उपनिवेश स्थापित होगा ही। फिर भी पूजा-पाठ, अर्घ्य-अर्पण में लोटे की प्रभुसत्ता है; स्टील के हल्के लोटों से पहले यह गौरव काँसे, पीतल, तांबे के लोटों को हासिल था, जो जल को विशेष स्वाद, शीतलता एवं आकार देते थे। लोटा जीवन और उसकी प्रतिष्ठा का अभिन्न प्रतीक है, तभी लोटा या लुटिया डुबोने का मतलब सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाना समझा गया। इसलिए जीवन से लोटे का दूर होते जाना चिंता का सबब होना चाहिए।